

# भारतीय प्राचीन साहित्य में पर्यावरण संरक्षण का महत्व



लेखक : रेखा पाण्डेय

तारीख : June 05, 2021

प्रकृति और मानव का अटूट संबंध सृष्टि के निर्माण के साथ ही चला आ रहा है। धरती सदैव ही समस्त जीव-जन्तुओं का भरण-पोषण करने वाली रही है। 'क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, पंच रचित अति अधम सरीरा।' इन पाँच तत्वों से सृष्टि की संरचना हुई है। बिना प्रकृति के जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भौतिक युग में जहाँ विकास के नाम पर मानव ने प्रकृति के सुंदर स्वरूप को क्षति पहुंचा पर्यावरण को ही चुनौती देकर अपने जीवन को ही संकट में डाल दिया है।

इस स्थिति में पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जागरूकता फैलाना अति आवश्यक हो गया है। इसी उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। 1972 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण सम्मेलन आयोजित किया गया था। लेकिन विश्व स्तर पर इसकी शुरुआत 5 जून 1974 को स्वीडन की राजधानी स्टॉक होम में हुई थी। जिसमें 119 देशों ने भाग लिया था। प्रत्येक वर्ष एक थीम निर्धारित की जाती है उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वर्ष भर कार्य किया जाता है।

सन 2021 की थीम 'पारिस्थितिकी तंत्र की बहाली (Ecosystem Restoration)' निर्धारित की गई है। जिसके अंतर्गत वृक्षारोपण कर उन्हें संरक्षित करना, बागान तैयार करना, नदियों की साफ-सफाई करना, इत्यादि पर्यावरण संरक्षण के लिए नए तरीकों को अपनाकर काम किया जाना है ताकि हमारी धरती प्रदूषण रहित हो। इसमें रहने वाले जीव-जंतुओं को सुरक्षित रखा जा सके। मनुष्य को शुद्ध वायु, जल प्राप्त हो सके।

वैसे पर्यावरण शब्द कोई प्राचीन शब्द नहीं है, अंग्रेजी में इसके लिए इन्वायरमेंट शब्द का प्रयोग किया जाता है। इन्वायरमेंट शब्द भी अधिक प्राचीन नहीं है। जर्मन जीव विज्ञानी अर्नेस्ट हीकल द्वारा इकोलॉजी शब्द का प्रयोग 1869 में किया गया, जो ग्रीक भाषा के ओइकोस (गृह या वासस्थान) शब्द से उद्भूत है। यह शब्द पारिस्थितिक के अंग्रेजी पर्याय के रूप में प्रचलित हुआ है। सर्व प्रथम डॉ. रघुवीर ने तकनीक शब्द निर्माण के समय इन्वायरमेंट (फ्रेंच भौतिकी शब्द) के लिए पर्यावरण शब्द का प्रयोग किया है, वे ही इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता हैं। इससे पूर्व प्राचीन साहित्य में परिधि, परिभू, परिवेश, मण्डल इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है।

वर्तमान में वैश्विक महामारी कोरोना के संकट से सम्पूर्ण विश्व संघर्ष कर रहा है। इस महामारी से जहां एक ओर मनुष्य के प्राण संकट में पड़ गए, संसार गतिहीन हो गया है, वहीं दूसरी ओर मनुष्यों का प्रकृति में हस्तक्षेप बन्द हो जाने से प्रकृति ने पुनः स्वयं को संवारना प्रारंभ कर दिया। नदियाँ स्वच्छ हो गईं, प्रदूषण कम हो गया। इस महामारी ने समस्त मानवजाति को एक सबक सिखा दिया कि प्रकृति और पर्यावरण की सभी प्राणियों जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। इस महामारी से उबरने के बाद पुनः संसार गतिशील हो विकासोन्मुख होगा परन्तु उन तरीकों से जिनसे प्रकृति एवं पर्यावरण क्षतिग्रस्त न हो।

आज जहां पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए विश्व में एक दिवस निर्धारित किया गया है जिसे पर्व के रूप में मनाया जाता है। वहीं भारतीय परंपराएँ सनातन काल से ही पर्यावरण को संरक्षित एवं सुरक्षित करने के लिए ही विकसित की गई थीं। भारतीय संस्कृति सदैव ही प्रकृति और पर्यावरण के महत्व एवं संरक्षण के प्रति सदैव ही जागरूक रही है। पर्यावरण के प्रति अगाध प्रेम व समर्पण की भावना हमारे धार्मिक ग्रन्थोंवेद, पुराणों, उपनिषद, रामायण, रामचरित मानस, महाभारत एवं लोक साहित्य में परिलक्षित होती है। हमारे मनीषियों ने पर्यावरण के संरक्षण-संवर्धन को विशेष महत्व दिया है।

भारत में प्रत्येक भाषा-साहित्य में प्रकृति से जुड़े प्रत्येक तत्वों का बड़ी सूक्ष्मता और सुंदरता के साथ वर्णित करते हुए, उसे देवतुल्य मानकर उसकी उपासना की गई है। यहां पंच महाभूत अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश के साथ ग्रह-नक्षत्र, नदियां, तालाबों, पर्वत, पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं सभी में ईश्वरीय सत्ता को स्वीकारते हुए उनके प्रति आदर-सम्मान की भावना परिलक्षित होती है। भारतीय परंपराओं में पर्यावरण अभिन्न अंग रहा है। प्रत्येक परम्पराओं के पीछे एक वैज्ञानिक तथ्य जुड़ा है।

वेदों को सृष्टि विज्ञान का प्रमुख ग्रंथ माना गया है। वेदों में पर्यावरण संतुलन के महत्व को प्रतिपादित करते हुए जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी का स्तवन अनेक स्थलों में किया गया है। अग्नि को पिता के समान कल्याणकारी कहा गया है। 'अग्ने! सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व' ऋग्वेद का प्रथम मंत्र ही अग्नि तत्व के स्तवन से होता है।

ऋग्वेद(1.23.248)में जल के महत्व को इस प्रकार बताया गया है -'अप्सु अन्तःअमृतं, अप्सु भेषजं' अर्थात् जल में अमृत है, जल में औषधि गुण विद्यमान रहते हैं अस्तु, आवश्यकता है जल की शुद्धता, स्वच्छता बनाये रखने की।

ऋग्वेद(1,555,1976) के ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्गार है--'पृथ्वीःपूःच उर्वी भव -अर्थात् समग्र पृथ्वी संपूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन, उपवन सब स्वच्छ रहें, गांव, नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हों तभी जीवन का सम्यक विकास हो सकेगा।

यजुर्वेद में यज्ञ विधियां एवं यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले मंत्र हैं। यज्ञ स्वयं एक चिकित्सा है। यज्ञ वायु मंडल को शुद्ध कर रोगों और महामारियों को दूर करता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद का अत्यंत महत्व है। अनेक प्रकार की चिकित्सा पद्धति एवं जड़ी बूटियां तथा शल्य चिकित्सा व विभिन्न रोगों का वर्णन है। सामवेद में ऐसे मंत्र मिलते हैं जिनसे ये

प्रमाणित होता है कि वैदिक ऋषियों को ऐसे वैज्ञानिक सत्यों का ज्ञान था जिनकी जानकारी आधुनिक वैज्ञानिकों को सहस्राब्दियों बाद प्राप्त हो सकी।

वेदों के पश्चात रामायण और रामचरित मानस की बात करें तो महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास जी ने मनुष्य के जीवन को सात्विक और सुंदर बनाने के लिए प्राकृतिक पर्यावरण की विशुद्धता पर विशेष बल दिया है तभी मानव जीवन आनंदकारी हो सकेगा। इन्होंने प्राकृतिक अवयवों को उपभोग की वस्तु नहीं मानते हुए समस्त जीवों और वनस्पतियों के बीच अटूट प्रेम सम्बन्ध भी स्थापित किया है।

तुलसीदास ने वनों की सुंदरता व उपयोगिता के साथ वन्य जीवों के परस्पर संबंध का वर्णन इसप्रकार किया है--

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक संग जग पंचानन।

खग मृग सहज बयरु बिसरई, सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

पर्यावरण संरक्षण को महत्व देते हुए तुलसीदास लिखते हैं, -

शीझि-खीझि गुरुदेव सिष सखा सुविहित साथू।

तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराथू॥

अर्थात् तुलसीदास ने वृक्ष से फल खाना तो उचित माना, लेकिन वृक्ष को काटना अपराध माना है।

वृक्षारोपण की परंपरा भी स्वाभाविक है जो प्राचीन काल से चली आ रही है। भगवान रामचंद्र जी के विवाह पश्चात राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर गुरु वशिष्ठ ने आदेश दिया -

"सफल रसाल पूगफल केरा, रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेर।"

श्रीराम ने भी 14 वर्ष के वनवास को अपने सौभाग्य के कारण माना जो उनके प्रकृति प्रेम को इंगित करता है। वनवास काल में सीता जी एवं लक्ष्मण ने भी वृक्षारोपण किया - "तुलसी तरुवर विविध सुहाए, कहुँ कहुँ सिर्यँ कहुँ लखन लगाए। अयोध्या नगरी में सभी ने सुमन वाटिकाएँ, लताएँ आदि लगाई हैं। नीचे के उदाहरण में सबहिं शब्द विशेष महत्त्व का है अर्थात् रोपण सभी को करना है उसका आकार, प्रकार जैसा भी हो।

सुमन वाटिका सबहिं लगाई। विविध भाँति करि जतन बनाई॥

लता ललित बहु जाति सुहाई। फूलहिं सदा बसन्त की नाई॥

रामचरित मानस के सुंदरकांड में लंका के प्राकृतिक सौंदर्य एवं पर्यावरण के सुव्यवस्थित स्वरूप का चित्रण इस प्रकार है-

"बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहिं"। रामचरित मानस में पर्यावरण के महत्त्व व संरक्षण के साथ मानव

के अटूट संबंध को दर्शाया गया है।

रामायण कालीन ग्रंथों में सजीव-निर्जीव दोनों तत्वों को चेतना सम्पन्न बताया गया है। वाल्मीकि जी ने रामायण में प्रकृति के मनोरम दृश्यों का वर्णन किया है। ऋषि मुनियों के आश्रम हरियाली युक्त थे जिनमें जीव-जन्तु एवं, पशु-पक्षियों का समूह स्वच्छन्द विचरण करते थे। महाभारत काल में भी मनीषियों ने पर्यावरण की महिमा का गान किया है। भगवान श्रीकृष्ण का बाल्यकाल प्रकृति की गोद में बीता। उन्होंने तो पग-पग पर पर्यावरण संरक्षण के संकेत दिए।

हमारे ऋषि मुनियों ने पृथ्वी का आधार ही जल और जंगल को माना है- "वृक्षाद वर्षन्ति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नं संभवः" अर्थात् वृक्ष जल है, जल अन्न है, अन्न जीवन है। जंगल को आनन्ददायक कहते हैं।

सम्राट विक्रमादित्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक के शासनकाल में भी वन्य जीवों एवं वनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया। आचार्य चाणक्य ने तो आदर्श शासन व्यवस्था के लिए अनिवार्य रूप से अरण्य पालों की नियुक्ति करने की बात कही है। हिन्दू धर्म व जीवन में चार आश्रम निर्धारित हैं जिनमें से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास का सीधा संबंध वनों से माना गया है। वृक्षों को देवता मानकर पूजने से उनका संरक्षण भी हो जाता है। मत्स्य पुराण में वृक्ष की तुलना मनुष्य के दस पुत्रों से की गई है।

"दशकूप समावापीः दशवापी समोहदः

दशहृद समःपुत्रो, दशपुत्र समोद्रुमः"।

पर्यावरणीय तत्वों में समन्वय होना ही सुख शांति का आधार है। दूसरे शब्दों में पदार्थों का परस्पर समन्वय ही शांति है। प्राकृतिक पदार्थों में शांति की वैदिक भावना है कि - "शं न उरुची भवतु स्वधाभिः। ऋग्वेद 7,35,3 ( अन्नादि से युक्त पृथिवी हमारी शांति के लिए हो।) स्योना पृथिवी नो भवानृक्षय निवेशनी यच्छा नः शर्म सप्रथाः। यजुर्वेद 36, 13 ( पृथिवी हमारे लिए कंटक रहित और बसने योग्य हो।) प्रकृति के दोहन, शोषण से मनुष्यों ने प्रकृति के नियमों की अवहेलना कर समस्त प्राणियों के जीवन को संकट में डाल दिया है। परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं के रूप में प्रकृति दंड देने से नहीं चूकती है।

वैदिक साहित्य में प्राकृतिक पदार्थों से कल्याण की कामना को स्वस्ति कहा गया है, जिसका आचार्य सायण "अविनाशं क्षेमं-सुरक्षित क्षेम" अर्थ किया है। इस नैरुक्त चिंतन है - अलब्धस्य लाभो योगः, प्राप्तस्य संरक्षणं क्षेमः - अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति योग है तथा प्राप्त का संरक्षण क्षेमा अतः सहज सुलभ प्राकृतिक पदार्थों का सुरक्षित रहना ही स्वस्ति है।

इसीलिए हमारे मनीषियों ने उद्घोष किया है - "ॐ द्यौः शान्तिः, अंतरिक्ष शान्तिः, पृथ्वी शान्तिः, आपःशान्तिः।" अतः मनुष्य को अपने मन, वचन और आचरण एवं व्यवहार से प्रकृति के कोप को शांत करके ही अपना जीवन सुखी और शांत बना सकता है।

आलेख



श्रीमती रेखा पाण्डेय (लिपि) हिन्दी व्याख्याता अम्बिकापुर, छत्तीसगढ़

